International Journal of Creative Research Thoughts
Volume 1, Issue.11, November 2013 *ISSN:-2320-2882*

ORIGINAL ARTICLE

'दलित'स्कूली छात्राओं की मनोवैज्ञानिक समस्याएं

कलीराम इवने
शोधार्थी
समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग बरकउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

डॉ श्रीमति सरला चतुवेदी
निर्देशिका शा. रामानंद संस्कृत महाविद्यालय गुफा मंदिर लालघाटी, भोपाल

सार :

मानव एक सामाजिक प्राणी है। यह समाज में ही जन्म लेता है तथा समस्त सामाजिक क्रिया–कलाप करते हुए वहीं पर मृत्यु को प्राप्त होता है। मनुष्य अपने स्वतंत्रता अस्तित्व के साथ समाज के हित को ध्यान में रखते हुए एक साथ जीवन–यापन कर मानवता का परिचय देता है। समाज में फैला रूढ़िवादी एवं अंधविश्वास विचारधारा विकास के मार्ग में रूकावट पैदा करती हैं। शिक्षा से व्यक्तित्व निखरता है, संस्कृति और अधिक संस्कार–संपन्न होती है, सभ्यता का विकास होता है,लौकिक ज्ञान चहुंमुखी होकर मानव जाति का मार्ग उत्तरोत्तर उत्थान हेतु प्रशस्त करता है।अभावग्रस्त 'दलित' बालिकाओं द्वारा शिक्षा ग्रहण न किये जाने के अनेक कारण हैं यथा सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ापन, घरेलू काम भाई–बहिनों की देखभाल, माता–पिता का अशिक्षित अथवा निरक्षर होना और पढ़ाई में मार्ग–दर्शन न मिलना, बाल–विवाह, सामाजिक रूढ़िवादिता, मां–बाप की शिक्षा–व्यय वहन न करने की स्थिति, घरेलू काम में हाथ बंटाना, दूसरे बच्चों के साथ सामंजस्य न कर पाने की प्रवृत्ति, माता–पिता के साथ बच्चे का उपयुक्त संवाद न होना, घर और शिक्षण संस्थाओं का वातावरण अनुकूल न होना, बच्चे पर माता–पिता का अनुशासन ढीला होना आदि–आदि।

प्रस्तावना :

एन्ट्रे बेटिले ने जाति–प्रथा के दोषों को बताते हुए कहा है कि ''जाति–प्रथा में यह दुर्गुण है कि उसमें असमानताएं मिटने की बजाय इकट्ठा होती चली जाती हैं और परिणामतः सामाजिक और राजनीतिकसत्ता एक ही जाति के कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित होती चली जाती है।'' अछूतों अथवा दलितों के अस्तित्व में आने और उनके विभिन्न युगों में जीवन–यापन के बारे में यद्यपि अनेक सिद्धान्त सामने आते हैं, किन्तु तर्कसम्मत सिद्धान्त यह प्रतीत होता है कि दलित आर्योत्तर भारतीयों के वंशज हैं। यह भयावह सत्य भी हमारे सम्मुख उपस्थित होता है कि विश्वभर में लगभग सभी समाजों की धन–संपदा, अवसरों एवं अन्य संसाधनों के असमान्य वितरण की समस्या न्यूनाधिक रूप से विद्यमान है। इसी परिस्थिति के कारण समाज में कुछ मानव–समूह आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से आगे बढ़ गये और कुछ मानव–समूह अपेक्षाकृत पीछे छूट गये तथा कालान्तर में ये सुविध–संपन्न और सुविध–वंचित

अथवा स्वामी और सेवक बन गये।स्वभावगत एवं संस्कारजन्य यह स्थिति पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ती गई और परिणामस्वरूप निर्धृनता, असुविधपूर्ण तथा प्रतिकूल वातावरण में जन्मे–पले–बढ़े–पढ़े बच्चे सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ते चले गये और राष्ट्र की मुख्य धरा से दूर होते गये। प्रथम श्रेणी में आने वाले व्यक्ति दूसरे श्रेणी में आने वाले निरीह लोगों पर भेदभावजन्य शासन एवं अन्याय, उत्पीड़न और अत्याचार करने लगे, जिसका सहज परिणाम यह हुआ कि उत्पीड़ित वर्ग में हीन–भावना, मानसिकता, सम्मानहीन पिछड़ेपन का भाव पैदा हो गया।

श्री राममनोहर लोहिया कहा करते थे कि ''जाति–प्रथा यथास्थिति समर्थक एवं परिवर्तन विरोधी एक दुर्जेय शक्ति है जो समाज में न केवल सभी प्रचलित रीति–रिवाजों की रक्षा करती है बल्कि अपमान एवं असत्य को भी पुष्ट करती है।'' कर्माधारित व्यवस्था में व्यक्ति अपने ज्ञान, गुणों एवं कर्मों के आधार पर उत्तम, मध्यम, अधम और निकृष्ट श्रेणी पाते थे, जबकीं जन्म पर आधारित व्यवस्था में ज्ञान–गुण–कर्म गौण हो गये और जन्म को प्रधानता मिल गई। इसका दुखद परिणाम यह हुआ कि अधम वर्ग में जन्मा बच्चा शिक्षित, गुणवान और कर्म–कुशल होने पर भी अधम ही बना रहा और उसे तथाकथित उच्च वर्ग ने सम्मानपूर्ण स्वीकृति प्रदान नहीं की।

भारत में जाति–प्रथा के प्रभाव के कारण ही एक बड़ा जन–समुदाय अछूत एवं दलित बनता चला गया। प्राचीन वर्ण–व्यवस्था में सम्मानपूर्ण स्थान न पाने वाले वर्ग को 'अवर्ण', 'अछूत', 'अंत्यज' अथवा 'पंचम (वर्ण)' कहा जाने लगा। इस वर्ग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखकर ज्ञात होता है कि अछूत और दलित कहे जाने वाले लोग आर्य–पूर्व भारतीयों के वंशज थे। ब्रिटिश काल में इसे दलित वर्ग कहा गया। साइमन कमीशन ने इस वर्ग को 'अनुसूचित जाति की संज्ञा दी। इन्हें 'बहिष्कृत वर्ग' नाम 1931 की जनगणना में दिया गया। 1970 में 'दलित पेंथर आंदोलन' में इन्हें 'दलित' की संज्ञा दी गई। 1933 में एक 'मंदिर–प्रवेश आंदोलन' के समय महात्मा ने इन्हें 'हरिजन' नाम दिया। प्रसिद्ध फ्रांसीसी समाजशास्त्री चार्ल्स फौरियर ने ठीक ही कहा है कि ''किसी राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था और राजनीति में स्त्रियों को जैसा स्थान प्राप्त हो, उससे यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि वह राष्ट्र कितना सभ्य और सुसंस्कृत है।'' नगरों और गांवों की सभ्यता से दूर वन प्रदेशों अथवा पर्वतीय घाटियों में रहने वाले विकास की दृष्टि से अति पिछड़े कबीलों को आदिवासी कहा गया। यही अछूत, अंत्यज और दलित वर्ग ही स्वतंत्रता भारत में अनुसूचित जातियों के नाम से जाना जाने लगा।

प्राचीनकाल में महिलाओं को समाज में उच्च एवं सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त होता था। वैदिक काल में स्त्रियों को निश्चय ही समाज और परिवार में उच्च स्थान प्राप्त थे। बौद्धकाल में नारी–साध्किा शिक्षा ग्रहण करके उच्च शिखर तक पहुंच जाती थी। कल्प–सूत्रा' नामक ग्रंथ में एक सहस्र जैन भिक्षुणियों के प्रथम श्रेणी के प्रवचनकार होने का उल्लेख मिलता है।याज्ञवल्क्य और गार्गी, मैत्रोयी तथा शंकराचार्य जनक और सुलभा, के बीच संवाद एवं शास्त्रार्थ से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में नारियां शिक्षा और ज्ञान के उच्च शिखर पर विद्यमान थीं। 'थेरी' कही जाने वाली बौद्ध भिक्षुणियां अपनी संपूर्ण प्रबल शक्ति–सामर्थ्य

योग्यता से सामाजिक उत्थान और धर्मिक कार्यों के प्रचार–प्रसार में लगी रहती थीं। कालान्तर में गुरुकुल में अध्ययनरत बाल–बालिका की प्रतिभा के आधार पर वर्ण–निर्धारण की प्रक्रिया में विकार आया तथा दुर्भाग्य से यह गुण–कर्मानुसार न होकर जन्मानुसार हो गया। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत में नारियों को जो सम्मानपूर्ण दर्जा समाज और परिवार में प्राप्त था, वह सभी युगों में विभिन्न कारणों से नीचे गिरता गया और वे शिक्षा, राजनीति और व्यावसायिक क्षेत्राों में लगातार पिछड़ती गईं तथा वे वर्तमान युग के महिला–पिछड़ेपन के अभिशाप से ग्रस्थ हो गईं। यहां इस बात का उल्लेख करना भी अनिवार्य है कि अनुच्छेद 15(4) को संविधन के मूल अधिकार शीर्षक अध्याय में रखा गया है जबकि अनुच्छेद 45–46 को 'राज्य की नीति के निर्देशक तत्व' शीर्षक में रख गया है। अनुच्छेद 46 में शासन पर यह दायित्व डाला गया है कि वह देश में दुर्बल वर्ग के लोगों, विशेषतः अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को विशेष रूप से बढ़ावा देगी तथा सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषणों से उनकी रक्षा करेगी। अनुच्छेद 15(4) में उल्लेख है कि नागरिकों के सामाजिक अथवा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के उत्थान हेतु विशेष विधन आदि बनाने के सरकार के अधिकार को शेष अनुच्छेद 15 और अनुच्छेद 29 की धरा (2) के प्रावधन किसी भी प्रकार से बाध्ति नहीं करेंगे अर्थात् अनुच्छेद 15(4) के माध्यम से सरकार को यह संवैधनिक अधिकार दिया गया है कि वह सरकारी शिक्षा संस्थाओं में पिछड़े नागरिकों के लिए, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण कर सकती है।

समाजशास्त्राी एम.एन.श्रीनिवासन के अनुसार वंशागत जाति वर्ण–व्यवस्था को जारी रखने के लिए स्त्रियों को कठोर अनुशासन में रखा जाने लगा। उन्हें अपनी ही जाति में विवाह करने, विवाह बचपन में ही करने, विधवा जीवन व्यतीत करने अथवा सती होने के लिए बाध्य किया जाने लगा। सिन्धु घाटी सभ्यता से प्राप्त हुए अवशेषों से इस मत की पुष्टि भी होती है। आर्योत्तर काल में भारतीय समाज चार वर्णोंदृ ब्राह्मण, क्षत्रिाय, वैश्य एवं शूद्र में बंट गया, जिसमें शूद्र निम्न स्तर पर थे। शायद इसीलिए आर्योत्तर वर्ण– व्यवस्था में उनको कोई स्थान ही नहीं दिया गया। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आर्य–पूर्व भारतीयों की एक मूलतः स्वतंत्रता तथा समता–आधरित संस्कृति थी। यह भी कहा जाता है कि ये चार वर्ण स्वयं भगवान ने बनाये अर्थात उन्होंने अपने मस्तक से ब्राह्मण, अपने बाजुओं से क्षत्रिाय, अपनी जंघाओं से वैश्य (बणिक तथा कुशल कारीगर आदि) और अपने चरणों से शूद्र बनाये। जो लोग इन चार श्रेणियों में नहीं आ पाए, वे 'अछूत', 'अवर्ण', 'अंत्यज', 'पंचम', 'हम–शूद्र' कहे जाने लगे।

विश्वभर में लगभग सभी समाजों में उपलब्ध अवसरों, ध्न–सम्पदा और अन्य संसाध्नों के असमान वितरण की समस्या न्यूनाधिक रूप से पाई जाती मुगल शासन काल में भी जातिगत अथवा वर्णाधरित व्यवस्था पूर्ववत् चलती रही।विडम्बना यह रही कि एक ओर तो उन्हें 'सुकोमल' कहा गया और दूसरी ओर उनके साथ 'कठोरतम' व्यवहार किया गया। शिक्षा से वंचित होकर उन्हें कूप–मंडूप की भांति घर की चारदीवारी तक सीमित रहने के लिए विवश होना पड़ा। समाज में नारियों का स्तर निम्न से निम्नतर होता गया।उन्हें पुरुषों की सेवक मात्रा समझा जाने लगा, गृहस्थ कार्यों और उत्सवों में भी उनकी भागीदारी कम कर दी गई। संक्षेप में कहें तो उन्हें पुरुषों का सुख–आराम देने तथा बच्चे पैदा करने का यंत्र मात्र मान लिया गया। उन्हें पुरुषों के पूर्णतः अधींन बना दिया गया ।

विवेचना :

जाति–प्रथा विश्व की प्राचीनतम वर्गाधरित व्यवस्थाओं में से एक है जो आज भी अस्तित्व में है। जाति–प्रथा का उद्‌गम हिन्दुओं के पवित्रा ग्रंथ मनुस्मृति में खोजा जा सकता है, जिसका रचना काल 200 ईसा–पूर्व से 100 ईसा–पूर्व के बीच में कहीं पड़ता है।

कालान्तर में देश के कुछ वर्ग भेदभावजन्य अन्याय, अत्याचार, शोषण तथा उत्पीड़न का शिकार हो जाते हैं, क्योंकि ये मूलभूत सुविधओं से भी वंचित होते चले जाते हैं। ऐसे उत्पीड़ित वर्ग में हीन भावना, आत्मसम्मान–रहित मानसिकता, पिछड़ेपन का भाव और आत्मविश्वास का अभाव आदि पैदा हो जाता है। परिणामतः असुविधा, अलाभ एवं प्रतिकूल वातावरण में जन्मे–पले–बढ़े–पढ़े बालक/बालिकाएं सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े ही रह जाते हैं और वे राष्ट्र की मुख्य धरा में सम्मिलित नहीं हो पाते।

इसका पहला कारण, समुदायों का गरीबी के कारण असंगठित होना। दूसरा कारण, समाज के मध्यम वर्ग द्वारा इनके साथ भेदभाव किया जाना है। बच्चों में भी लड़कियां अपेक्षाकृत अधिक समाज और परिवार की उपेक्षा की शिकार बनती हैं और अशिक्षित रह जाती हैं।अभावग्रस्त बालिकाओं द्वारा शिक्षा ग्रहण न किये जाने के अनेक कारण हैं यथा सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ापन, घरेलू काम– भाई–बहिनों की देखभाल, बाल–विवाह, माता–पिता का अशिक्षित अथवा निरक्षर होना और पढ़ाई में मार्ग–दर्शन न मिलना, घरेलू काम में हाथ बंटाना, सामाजिक रूढ़िवादिता, मां–बाप की शिक्षा–व्यय वहन न करने की स्थिति, दूसरे बच्चों के साथ सामंजस्य न कर पाने की प्रवृत्ति, माता–पिता के साथ बच्चे का उपयुक्त संवाद न होना, घर और शिक्षण संस्थाओं का वातावरण अनुकूल न होना, बच्चे पर माता–पिता का अनुशासन ढीला होना आदि–आदि। जबकीं भविष्य में नारी और जननी बनने वाली हैं जिन पर प्रगतिशील भावी पीढ़ी और स्वस्थ समाज के निर्माण का दायित्व सर्वाधिक है। अब तक के शोधो से यह निष्कर्ष निकला है कि सामाजिक पिछड़ेपन के कारण बालिकाओं का बौद्धिक और भाषायी विकास अवरुद्ध होता है तथा उनकी शिक्षा–ग्रहण क्षमता प्रभावित होती है।यह भी पाया गया है कि सामाजिक दृष्टि से हीन भावना की शिकार हुई बालिकाएं पढ़ने–लिखने में रुचि नहीं लेती हैं और स्कूलों आदि में तत्समय उपलब्ध सुविधओं क पूरा लाभ नहीं उठा पातीं। उनकी बुद्धि का स्तर, आकांक्षा, भाषा–अभिव्यक्ति, सामान्य ज्ञान, विश्लेषण–क्षमता, समझने, सार–ग्रहण करने और स्मरण करने की शक्ति भी प्रायः निम्न स्तर की होती है।

उपसंहार :

अभावग्रस्त बालिकाओं का बौद्धिक विकास और अध्ययन संबंधीं उपलब्धि अपेक्षित स्तर की नहीं हो पाती। दलित नारी शताब्दियों से निर्बल, अधिकार रहित, अपनी बात कहने के अधिकार से वंचित, गरिमाहीन, व्यक्तित्व–शून्य रहती आई है, किन्तु अब उनमें भी जागृति आने लगी है

और वे निश्चित रूप से नहीं चाहतीं कि भविष्य में उनको सताया जाये, दबाया जाये या फिर उनका किसी भी प्रकार से शोषण किया जाये, अथवा उन्हें उनके गृहस्थ, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित रखा जाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- चमन लाल (2001) : *''भारतीय साहित्य में दलित एवं स्त्री''*, सारांश प्रकाशन, दिल्ली– हैदराबाद।
- जगजीवन राम (2001) : *''भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या''* राजपाल पब्लिकेशन, दिल्ली।
- मेघवाल, कुसुम (1994) : *''भारतीय नारी के उद्धारक डॉ. बी.आर.अम्बेडकर''*, राजस्थान दलित साहित्य अकादमी, उदयपुर–313001
- राज, किशोर (1994) : *''स्त्री के लिए जगह''*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002
- मैथ्यू, पी.डी. एवं बक्शी, पी.एम. (1993) : *''महिलाएं व संविधन''*, भारतीय सामाजिक संस्थान, नई दिल्ली
- कुसुम यदुलाल (2010) अनुसूचित जाति एवं जनजाति की स्कूली छात्राओं की मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक समस्याए, परिप्रेक्ष्य वर्ष 17, अंक 2,